स्वामी विवेकानंद

# मैं कौन हूँ?

# मैं कौन हूँ?

## स्वामी विवेकानंद

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

# अपनी बात

**स्वा**मी विवेकानंद ने भारत में उस समय अवतार लिया जब यहाँ हिंदू धर्म के अस्तित्व पर संकट के बादल मँडरा रहे थे। पंडित-पुरोहितों ने हिंदू धर्म को घोर आंडबरवादी और अंधविश्वासपूर्ण बना दिया था। ऐसे में स्वामी विवेकानंद ने हिंदू धर्म को एक पूर्ण पहचान प्रदान की। इसके पहले हिंदू धर्म विभिन्न छोटे-छोटे संप्रदायों में बँटा हुआ था। तीस वर्ष की आयु में स्वामी विवेकानंद ने शिकागो, अमेरिका में विश्व धर्म संसद में हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व किया और इसे सार्वभौमिक पहचान दिलवाई।

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने एक बार कहा था, "यदि आप भारत को जानना चाहते हैं, तो विवेकानंद को पढ़िए। उनमें आप सबकुछ सकारात्मक ही पाएँगे, नकारात्मक कुछ भी नहप।''

रोमां रोलां ने उनके बारे में कहा था, "उनके द्वितीय होने की कल्पना करना भी असंभव है। वे जहाँ भी गए, सर्वप्रथम हुए...हर कोई उनमें अपने नेता का दिग्दर्शन करता। वे ईश्वर के प्रतिनिधि थे तथा सब पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेना ही उनकी विशिष्टता थी। हिमालय प्रदेश में एक बार एक अनजान यात्री उन्हें देख, ठिठककर रुक गया और आश्चर्यपूर्वक चिल्ला उठा, "शिव! यह ऐसा हुआ मानो उस व्यक्ति के आराध्य देव ने अपना नाम उनके माथे पर लिख दिया हो।''

39 वर्ष के संक्षिप्त जीवनकाल में स्वामी विवेकानंद जो काम कर गए, वे आने वाली अनेक शताब्दियों तक पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

वे केवल संत ही नही थे, एक महान देशभक्त, प्रखर वक्ता, ओजस्वी विचारक, रचनाधर्मी लेखक और करुण मावनप्रेमी भी थे। अमेरिका से लौटकर उन्होंने देशवासियों का आह्वान करते हुए कहा था, "नया भारत निकल पड़े मोदी की दुकान से, भड़भूजे के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से; निकल पड़े झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।''

और जनता ने स्वामीजी की पुकार का उत्तर दिया। वह गर्व के साथ निकल पड़ी। गांधीजी को आजादी की लड़ाई में जो जन-समर्थन मिला, वह विवेकानंद के आह्वान का ही फल था। इस प्रकार वे भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के भी एक प्रमुख प्रेरणा-स्रोत बने।

उनका विश्वास था कि पवित्र भारत वर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्यभूमि है। यहाँ बड़े-बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ, यही संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहप - केवल यहप आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला हुआ है।

उनके कथन - "उठो, जागो, स्वयं जगकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो और तब तक रुको नहीं, जब तक कि लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।'' - पर अमल करके व्यक्ति अपना ही नहीं, सार्वभौमिक कल्याण कर सकता है। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

प्रस्तुत पुस्तक 'मैं कौन हूँ' में स्वामीजी ने सरल शब्दों में एक आम आदमी के उन सवालों के जवाब दिए हैं, उन जिज्ञासाओं को शांत करने का प्रयास किया है जिनमें वह अकसर उलझ कर रह जाता है - कि आखिर वह है कौन? ये आत्मा-परमात्मा कौन हैं? स्वयं को कैसे जाना जा सकता है? उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? धर्म का जीवन में क्या महत्त्व है? जीवन की सार्थकता क्या है? ऐसे ही अनेक सवालों और जिज्ञासाओं की प्रतिपूर्ति करने वाली एक प्रेरक और ज्ञानवर्द्धक पुस्तक।

# 1.

# मनुष्य : श्रेष्ठतम जीव

सब प्रकार के शरीरों में मानव-शरीर ही श्रेष्ठतम है, मनुष्य ही श्रेष्ठतम जीव है। मनुष्य सब प्रकार के प्राणियों से - यहाँ तक कि देवादि से भी श्रेष्ठ है। मुनष्य से श्रेष्ठतर कोई और नहीं। देवताओं को भी ज्ञानलाभ के लिए मनुष्य देह धारण करनी पड़ती है। एकमात्र मनुष्य ही ज्ञानलाभ का अधिकारी है, यहाँ तक कि देवता भी नहीं। यहूदी और मुसलमानों के मतानुसार, ईश्वर ने देवदूत और अन्य समुदय सृष्टियों के बाद मनुष्य की सृष्टि की। और मनुष्य के सृजन के बाद ईश्वर ने देवदूतों से मनुष्य को प्रणाम और अभिनंदन कर आने के लिए कहाँ इबलीस को छोड़कर बाकी सबने ऐसा किया। अतएव ईश्वर ने इबलीस को अभिशाप दे दिया। इससे वह शैतान बन गया। इस रूपक के पीछे यह महान सत्य निहित है कि संसार में मनुष्य जन्म ही अन्य सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

आश्चर्य की बात है कि सभी धर्म एक स्वर से घोषणा करते हैं कि मनुष्य पहले निष्पाप और पवित्र था, पर आज उसकी अवनति हो गयी है। इस भाव को फिर वे रूपक की भाषा में या दर्शन की स्पष्ट भाषा में अथवा कविता की सुंदर भाषा में क्यों न प्रकाशित करें, पर वे सब के सब अवश्य इस एक तत्त्व की घोषणा करते हैं।

अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप एक ही है, वह अनंत और सर्वव्यापी है, और यह प्रातिभासिक जीव मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का एक सीमाबद्ध भाव मात्र है। इसी अर्थ में पूर्वोक्त पौराणिक तत्त्व भी सत्य हो सकते हैं कि प्रातिभासिक जीव, चाहे वह कितना की महान क्यों न हो, मनुष्य के इस अतींद्रिय प्रकृत स्वरूप का धुँधला प्रतिबिंब मात्र है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप - आत्मा - कार्य-कारण से अतीत होने के कारण, देश-काल से अतीत होने के कारण, अवश्य मुक्तस्वभाव है। वह कभी बद्ध नहीं थी, न ही बद्ध हो सकती थी। यह प्रातिभासिक जीव, यह प्रतिबिंब, देश काल-निमित्त के द्वारा सीमाबद्ध होने के कारण बद्ध है। अथवा हमारे कुछ दार्शनिकों की भाषा में, 'प्रतीत होता है, मानो वह बद्ध हो गयी है, पर वास्तव में वह बद्ध नहीं है।'

संपूर्ण शास्त्र एवं विज्ञान मनुष्य के रूप में प्रकट होने वाली इस आत्मा की महिमा की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह समस्त ईश्वरों मे श्रेष्ठ है, एकमात्र वही ईश्वर है, जिसकी सत्ता सदैव थी, सदैव है और सदैव रहेगी।

आदमी भ्रमवश अपने से बाहर विभिन्न देवताओं की तलाश में रहता है, पर जब उसके अज्ञान का चक्कर समाप्त होता है, तो वह पुन: लौटकर अपनी आत्मा पर आ टिकता है। जिस ईश्वर की खोज में वह दर-दर भटकता रहा, वन-प्रांतर तथा मंदिर-मसजिद को छानता रहा, जिसे वह स्वर्ग मैं बैठकर संसार पर शासन करनेवाला मानता रहा, वह कोई अन्य नहीं, बल्कि उसकी अपनी ही आत्मा है। वह मैं है, और मैं वह (जो आत्मा हूँ) ब्रहा हूँ, मेरे इस तुच्छ 'मैं' का कभी अस्तित्व नहीं रहा।

ईश्वरोपासना करने के लिए प्रतिमा आवश्यक है, तो उससे कहीं श्रेष्ठ मानव-प्रतिमा मौजूद ही है। यदि ईश्वरोपासना के लिए मंदिर निर्माण करना चाहते हो, तो करो, किंतु सोच लो कि उससे भी उच्चतर, उससे भी महान् मानव देह रूपी मंदिर तो पहले से ही मौजूद है।

जीवित ईश्वर तुम लोगों के भीतर रहते हैं, तब भी तुम मंदिर गिरजाघर आदि बनाते हो और सब प्रकार की काल्पनिक झूठी चीजों में विश्वास करते हो। मनुष्य-देह में स्थित मानव-आत्मा ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है। पशु भी भगवान के मंदिर हैं, किंतु मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ मंदिर है। यदि मैं उसकी उपासना नहीं कर सका, तो अन्य किसी भी मंदिर में कुछ भी उपकार नहीं होगा। जिस क्षण मैं प्रत्येक मनुष्य देह रूपी मंदिर में उपविष्ट ईश्वर की उपलब्धि कर सकूँगा, जिस क्षण मैं प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख भक्तिभाव से खड़ा हो सकूँगा और वास्तव में उनमें ईश्वर देख सकूँगा, जिस क्षण मेरे अंदर यह भाव आ जाएगा, उसी क्षण मैं संपूर्ण बंधनों से मुक्त हो जाऊँगा - बाँधनेवाले पदार्थ हट जाएँगे और मैं मुक्त हो जाऊँगा। यह आदर्श अवस्था वह है, जिसमें मनुष्य का अहंभाव पूर्णतया नष्ट हो जाता है, उसका स्वत्व-भाव लुप्त हो जाता है, जब उसके लिए ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसे वह 'मैं' और 'मेरी' कह सके, जब वह पूर्णतया आत्म-विसर्जन कर देता है, मानो अपनी आहुति दे देता है। इस प्रकार अवस्थापन्न व्यक्ति के अंतर में स्वयं ईश्वर निवास करता है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की अहं-वासना पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी है, एकदम निर्मूल हो गयी है। यह है आदर्श व्यक्ति।

जिस परिमाण में मनुष्य इंद्रिय-परायणता को छोड़कर उच्च भाव-जगत् में अवस्थान करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, जिस परिमाण में वह विशुद्ध चिंतन रूपी प्राणवायु फेफड़ों के भीतर खींचने में समर्थ हो जाता है तथा जितने अधिक समय तक वह उस उच्च अवस्था में रह सकता है, केवल इसी आधार पर उसका विकास आँका जा सकता है।

पहले हमें ईश्वर बन लेने दो। त्तपश्चात् दूसरों को ईश्वर बनाने में सहायता देंगे। बनो और बनाओ, यही हमारा मूल-मंत्र रहे।

ऐसा न कहो कि मनुष्य पापी है। उसे यह बताओ कि तू ब्रह्म है। यदि कोई शैतान हो, तो भी हमारा कर्तव्य यही है कि हम ब्रह्म का ही स्मरण करें, शैतान का नहीं।

जब तुम अपने आपको शरीर समझते हो, तुम विश्व से अलग हो; जब तुम अपने आपको जीव समझते हो, तब तुम अनंत अग्नि के एक स्फुलिंग हो; जब तुम अपने आपको आत्मस्वरूप मानते हो, तभी तुम विश्व हो।

चालाकी से कोई बड़ा काम पूरा नहीं हो सकता। प्रेम, सत्यानुराग और महान् वीर्य की सहायता से सभी कार्य होते हैं। त्त् कुरु पौरुषम, इसलिए पुरुषार्थ को प्रकट करो।

हम नियम नहीं चाहते, हम चाहते हैं नियम को तोड़ने का सामर्थ्य। हम नियमों से बाहर चले जाना चाहते हैं। यदि तुम नियमों से बँधे हो, तो मिट्टी के ढेले की भाँति निर्जीव हो। प्रश्न यह नहें है कि तुम नियमातीत हो या नहीं; किंतु यह धारणा कि हम नियमातीत हैं, समस्त मानव इतिहास की आधारशिला है।

प्रत्येक मनुष्य पहले से ही अनंत है, केवल इन सब विभिन्न अवस्था-चक्ररूपी द्वारों या प्रतिबंधों ने उसे बद्ध कर रखा है। इन प्रतिबंधों को हटाने मात्र से ही उसकी वह अनंत शक्ति बड़े वेग के साथ अभिव्यक्त होने लगती है।

योगी कहते हैं कि योगी के अतिरिक्त अन्य सब मानो गुलाम हैं - खाने-पीने के गुलाम, अपनी स्त्री के गुलाम, अपने लड़के-बच्चों के गुलाम, रुपये-पैसे के गुलाम, स्वदेशवासियों के गुलाम, नाम-यश के गुलाम, जलवायु के गुलाम, इस संसार के हजारों विषयों के गुलाम! जो मनुष्य इन बंधनों में से किसी में भी नहीं फँसे, वे ही यथार्थ मनुष्य हैं - यथार्थ योगी हैं।

प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके अपने वर्तमान उन्नति-क्षेत्र के भीतर स्वयं को उन्नत बनाने के लिए अवसर विद्यमान है। हम अपना नाश नहीं कर सकते, हम अपने भीतर की जीवनी शक्ति को नष्ट या दुर्बल नहीं कर सकते, परंतु उस शक्ति को विभिन्न दिशा में परिचालित करने के लिए हम स्वतंत्र हैं।

व्यावहारिक और शरीर से सबल होने की शिक्षा देनी चाहिए। ऐसे केवल बारह नर-केसरी संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं; परंतु लाख-लाख भेड़ों द्वारा यह नहीं होने का। और दूसरे, किसी व्यक्तिगत आदर्श के अनुकरण की शिक्षा नहीं देनी चाहिए, चाहे वह आदर्श कितना ही बड़ा क्यों न हो।

मनुष्य एक छोटे बक्से में कुंडलित अनंत स्प्रिंग जैसा है, जोकि अपने को खोलने का प्रयत्न कर रहा है। हम लोग जो भी सामाजिक व्यवस्था देखते हैं, वह इस अभिव्यक्ति का प्रयत्न मात्र है।

आप तो ईश्वर की आन हैं, अमर आनंद के भागी हैं, पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं। आप इस मर्त्यभूमि पर देवता हैं। आप भला पापी? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है, वह मानवस्वरूप पर घोर लांछन है। आप उठें! हे सिंहो! आयें, और इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दें कि आप भेड़ हैं।

हम सभी एक जीवाणु-कोष से उत्पन्न हुए हैं और हम लोगों में जो कुछ भी शक्ति है, वह उसी में कुंडलीय-रूप में बैठी थी। तुम लोग यह नहीं कह सकते कि वह खाद्य में से आयी है; ढेर-की-ढेर खाद्य-सामग्री लेकर एक पर्वत बना डालो, किंतु देखोगे उसमें से कोई शक्ति नहीं निकलती। हम लोगों के भीतर शक्ति पहले से ही अव्यक्त भाव में निहित थी, और वह थी अवश्य। इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा के भीतर अनंत शक्ति भरी पड़ी है, मनुष्य को उसका ज्ञान हो या न हो। उसे केवल जानने की ही अपेक्षा है। धीरे धीरे मानो वह अनंत शक्तिमान दैत्य जाग्रत होकर अपनी शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर रहा है और जैसे-जैसे वह सचेतन होता जाता है, वैसे-वैसे एक के बाद एक उसके बंधन टूटते जाते हैं, श्रृंखलाएँ छिन्न-भिन्न होती जाती हैं; और वह दिन अवश्य ही आएगा, जब वह अपनी अनंत शक्ति के पूर्ण ज्ञान के साथ अपने पैरों पर उठ खड़ा होगा। आओ, हम सब लोग उस महिमामयी निष्पत्ति को शीघ्र लाने में सहायता करें।

❑

# 2.

# आत्मतत्त्व : आत्मा

तुममें से बहुतों ने मैक्समूलर की सुप्रसिद्ध पुस्तक - 'वेदांत दर्शन पर तीन व्याख्यान' को पढ़ा होगा, और शायद कुछ लोगों ने इसी विषय पर प्रोफेसर डायसन की जर्मन भाषा में लिखित पुस्तक भी पढ़ी हो। ऐसा लगता है कि पाश्चात्य देशों में भारतीय धार्मिक चिंतन के बारे में जो कुछ लिखा या पढ़ाया जा रहा है, उसमें भारतीय दर्शन की अद्वैतवाद नामक शाखा प्रमुख स्थान रखती है। यह भारतीय धर्म का अद्वैतवाद वाला पक्ष है, और कभी-कभी ऐसा भी सोचा जाता है कि वेदों की सारी शिक्षाएँ इस दर्शन में सन्निहित हैं। खैर, भारतीय चिंतन-धारा के बहुत सारे पक्ष हैं; और यह अद्वैतवाद तो अन्य वादों की तुलना में सबसे कम लोगों द्वारा माना जाता है। अत्यंत प्राचीन काल से ही भारत मे अनेकानेक चिंतन-धाराओं की परंपरा रही है, और चूँकि शाखाविशेष के अनुयायिओं द्वारा अंगीकार किये जाने वाले मतों को निर्धारित करने वाला कोई सुसंघटित या स्वीकृत धर्मसंघ अथवा कतिपय व्यक्तियों के समूह वहाँ कभी नहें रहे, इसलिए लोगों को सदा से ही अपने मन के अनुरूप धर्म चुनने अपने दर्शन को चलाने तथा अपने संप्रदायों को स्थापित करने की स्वतंत्रता रही। फलस्वरूप हम पाते हैं कि चिरकाल से ही भारत में मतमतांतरों की बहुतायत रही है। आज भी हम कह नहीं सकते कि कितने सौ धर्म वहाँ फल रहे हैं और कितने नये धर्म हर साल उत्पन्न होते हैं। ऐसा लगता है कि उस राष्ट्र की धार्मिक उर्वरता असीम है।

भारत में प्रचलित इन विभिन्न मतों को मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, आस्तिक और नास्तिक। जो मत हिंदू धर्मग्रंथों अर्थात् वेदों को सत्य की शाश्वत निधि श्रुति मानते हैं, उन्हें आस्तिक कहते हैं, और जो वेदों को न मानकर अन्य प्रमाणों पर आधारित हैं, उन्हें भारत में नास्तिक कहते हैं। आधुनिक नास्तिक हिंदू मतों में दो प्रमुख हैं : बौद्ध और जैन। आस्तिक मतावलंबी कोई-कोई कहते हैं कि शास्त्र हमारी बुद्धि से अधिक प्रमाणिक हैं, जबकि दूसरे मानते हैं कि शास्त्रों के केवल बुद्धिसम्मत अंश को ही स्वीकार करना चाहिए, शेष को छोड़ देना चाहिए।

आस्तिक मतों के भी फिर तीन शाखाएँ हैं : सांख्य, न्याय और मीमांसा। इनमें से पहली दो शाखाएँ किसी संप्रदाय की स्थापना करने में सफल न हो सकीं, यद्यपि दर्शन के रूप में उनका अस्तित्व अभी भी है। एकमात्र संप्रदाय जो अभी भारत में प्राय: सर्वत्र प्रचलित है, वह है उत्तरमीमांसा अथवा वेदांत। इस दर्शन को 'वेदांत' कहते हैं। भारतीय दर्शन की समस्त शाखाएँ वेदांत, यानी उपनिषदों से ही निकली हैं, किंतु अद्वैतवादियों ने यह नाम खासकर अपने लिए रख लिया, क्योंकि वे अपने संपूर्ण धर्म-ज्ञान तथा दर्शन को एकमात्र वेदांत पर ही आधारित करना चाहते थे। आगे चलकर वेदांत ने प्राधान्य प्राप्त किया और, भारत में अब जो अनेकानेक संप्रदाय हैं, वे किसी-न-किसी रूप में उसी की शाखाएँ हैं। फिर भी ये विभिन्न शाखाएँ अपने विचारों में एकमत नहीं हैं।

हम देखते हैं कि वेदांतियों के तीन प्रमुख भेद हैं। पर एक विषय पर सभी सहमत हैं। वह यह कि ईश्वर के अस्तित्व में सभी विश्वास करते हैं। सभी वेदांती यह भी मानते हैं कि वेद शाश्वत आप्तवाक्य हैं, यद्यपि उनका ऐसा मानना उस तरह का नहीं, जिस तरह ईसाई अथवा मुसलमान लोग अपने-अपने धर्मग्रंथों के बारे में मानते हैं। वे अपने ढंग से ऐसा मानते हैं। उनका कहना है कि वेदों में ईश्वरसंबंधी ज्ञान सन्निहित है और चूँकि ईश्वर चिरंतन है, अत: उसका ज्ञान भी शाश्वत रूप से उसके साथ है। अत: वेद भी शाश्वत है। दूसरी बात जो सभी वेदांती मानते हैं, वह है सृष्टिसंबंधी चक्रीय सिद्धांत। सब यह मानते हैं कि सृष्टि चक्रों या कल्पों में होती है। संपूर्ण सृष्टि का आगम और विलय होता है। आरंभ होने के बाद सृष्टि क्रमश: स्थूलतर रूप लेती जाती है, और एक अपरिमेय अवधि के पश्चात् पुन: सूक्ष्मतर रूप में बदलना शुरू करती है तथा अंत में विघटित होकर विलीन हो जाती है। इसके बाद विराम का समय आता है। सृष्टि का फिर उद्भव होता है और फिर इसी क्रम की आवृत्ति होती है। ये लोग दो तत्त्वों को स्वत: प्रमाणित मानते हैं : एक को 'आकाश' कहते हैं, जो वैज्ञानिकों के 'ईश्वर' से मिलता-जुलता है और दूसरे को 'प्राण' कहते हैं, जो एक प्रकार की शक्ति है। 'प्राण' के विषय में इनका कहना है कि इसके कंपन से विश्व की उत्पत्ति होती है। जब सृष्टि-चक्र का विराम होता है, तो व्यक्त प्रकृति क्रमश: सूक्ष्मतर होते-होते आकाश तत्त्व के रूप में विघटित हो जाती है, जिसे हम न देख सकते हैं और न अनुभव ही कर सकते हैं; किंतु इसी से पुन: समस्त वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं।

प्रकृति में हम जितनी शक्तियों देखते हैं, जैसे, गुरुत्वाकर्षण, आकर्षण, विकर्षण अथवा विचार, भावना एवं स्नायविक गति - सभी अंत्तोगत्वा विघटित होकर प्राण में परिवर्तित हो जाती हैं और प्राण का स्पंदन रुक जाता है। इस स्थिति में वह तब तक रहता है, जब तक सृष्टि का कार्य पुन: प्रारंभ नहें हो जाता। उसके प्रारंभ होते ही 'प्राण' में पुन: कंपन होने लगते हैं। इस कंपन का प्रभाव 'आकाश' पर पड़ता है और तब सभी रूप और आकार एक निश्चित क्रम में बाहर प्रक्षिप्त होते हैं।

सबसे पहले जिस दर्शन की चर्चा मैं तुमसे कहूँगा, वह द्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। द्वैतवादी यह मानते हैं कि विश्व का स्रष्टा और शासक ईश्वर शाश्वत रूप से प्रकृति एवं जीवात्मा से पृथक है। ईश्वर नित्य है, प्रकृति नित्य है तथा सभी आत्माएँ भी नित्य हैं। प्रकृति तथा आत्माओं की अभिव्यक्ति होती है एवं उनमें परिवर्तन होते हैं परंतु ईश्वर ज्यों-का-त्यों रहता है। द्वैतवादियों के अनुसार ईश्वर सगुण है; उसके शरीर नहीं है, पर उसमें गुण हैं। मानवीय गुण उसमें विद्यमान हैं; जैसे वह दयावान है, वह न्यायी है, वह सर्वशक्तिमान है, वह बलवान है, उसके